इकाई 11 पन्नालाल पटेल का युग संदर्भ

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 युग संदर्भ

11.3 गांधीयुग

11.4 साहित्य में गाँव

11.5 पन्नालाल पटेल के समकालीन रचनाकार

11.6 सारांश

11.7 प्रश्न

11.0 उद्देश्य

कोइ भी लेखक अपने युग की उपज होता है। वह जिस युग में जीता है, उस युग की सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियाँ उसका निर्माण करती हैं; उसके सर्जन को भी उसका युग-संदर्भ प्रभावित करता है। उसके युग का सामाजिक जीवन, उसकी समस्याएँ, उसकी नीति-रीति उसकी रचनाओं में अभिव्यक्ति पाती हैं। वह जिस भाषा का प्रयोग करता है, वह भाषा भी उसकी युग-चेतना और युग-संस्कारों से ओतप्रोत होती है। पूर्ववर्ती रचनाकार तथा रचनाएँ भी किसी सर्जक की रचनाशीलता को प्रभावित करती हैं तथा उसका दिशा-निर्देश करती हैं। इसलिए पन्नालाल पटेल के बारे में जानने के लिए उनके युग को जानना ज़रूरी है। साथ ही पन्नालाल के पूर्ववर्ती तथा उनके समकालीन रचनाकारों के सर्जन का परिचय प्राप्त करेंगे, जिससे पन्नालाल को तथा उनकी कृति 'मानवीनी भवाई' को समझने में सुविधा रहेगी।

11.1 प्रस्तावना

पन्नालाल पटेल बीसवीं सदी के चौथे, पाँचवे और छठे दशक के सर्जक रहे हैं। जिस समय उन्होंने लिखना शुरू किया, उन दिनों गांधीजी द्वारा प्रेरित स्वतंत्रता आंदोलन शुरू हो चुका था। समाज में नर्मद के जमाने की तुलना में भिन्न प्रकार का नवजागरण आरंभ हो चुका था। साहित्य तथा समाज दोनों एक मंच से आज़ादी तथा मानवता के लिए कार्य कर रहे थे। दूसरी ओर गुजराती साहित्य में 'पंडितयुग' का प्रभाव क्षीण हो रहा था और 'गांधीयुग' के लिए वातावरण तैयार हो रहा था। साथ ही गुजराती गद्य विधाओं का विकास बहुत तेजी से हो रहा था। निबंध, उपन्यास, कहानी तथा एकांकी में रचनाएँ होने लगी थीं। सबसे अधिक ध्यान देने योग्य बात यह है कि गांधीयुग के प्रारंभ से ही गुजराती साहित्य में गाँव, गाँव के लोगों तथा गाँव की समस्याओं का निरूपण स्थानीय बोली-भाषा में होने लगा था। ऐसी परिस्थितियों में पन्नालाल का उदय एक लेखक के रूप में हुआ।

कवि नरसिंह (नरसी) मेहता गुजराती के आदि कवि माने जाते हैं; उनका समय चौदहवीं सदी का उत्तरार्ध और पंद्रहवीं सदी का पूर्वार्ध है। वैसे तो इतिहास का मध्यकाल समग्र

भारत में 'अंधकारयुग' के रूप में भी जाना जाता है। कला और संस्कार के क्षेत्र में ईसा के ग्यारहवें शतक तक का समय तो मानो शुष्क और शून्य ही था। शोधकर्ताओं ने नरसी मेहता के पहले जैन एवं जैनेतर कवियों द्वारा रचित विपुल साहित्य जैन भंडारों को खोज निकाला है। नरसी मेहता के पूर्व के युग को 'रास-रासा युग' के नाम से जाना जाता है।

11.2 युग संदर्भ

मध्यकाल का सार साहित्य पद्यात्मक है। कथात्मक साहित्य भी पद्य में ही लिखे नहीं गए हैं। उस जमाने में छापाखाना तो था नहीं; इसलिए स्वाभाविक है कि गाकर प्रस्तुत किया जाने वाला साहित्य ही प्रचलित हो। नरसी मेहता तथा उनके बाद के भक्त कवियों ने जिस भक्ति साहित्य की रचना की, उसमें साहित्यिक गुणवत्ता अधिक है। मध्यकाल का सही समय ईसा की पंद्रहवीं सदी से अठारहवीं सदी तक माना जा सकता है। उस युग के प्रमुख गुजराती भक्त कवियों में नरसी मेहता, भालण, मीराबाई, प्रीतम, धीरा, अखा, प्रेमानंद तथा शामण माने जा सकते हैं। वैसे तो गुजराती भाषा का उद्भव भालण के समय से माना जाता है। परंतु उसमें सही निखार प्रेमानंद और अखा आदि में मिलता है। दयाराम मध्यकालीन गुजराती साहित्य के आखिरी प्रतिनिधि माने जाते हैं।

वैसे देखें, तो जिस समय कवि दयाराम पदों और गरबियों (कृष्णभक्ति के गेय पद) की रचना कर रहे थे। उस समय तक परोक्ष रूप से अंग्रेजों का शासन शुरू हो चुका था और आधुनिक युग के प्रारंभिक कवि दलपतराम (सन् 1818) तथा नर्मद (सन् 1833) पैदा हो चुके थे। दलपतराम ने सन् 1833 के आसपास शब्दों को जोड़ना भी शुरू कर दिया था। व्यापार के लिए आए अंग्रेजों ने देशी राजाओं की निर्बलता का लाभ उठा कर उनके साथ शासन-व्यवस्था में भागीदारी शुरू कर दी थी। भारतीय जनता को अंग्रेज़ी शिक्षा देने के लिए सन् 1820 में कानून बन गया था और कलकत्ता में अंग्रेज़ी स्कूल की शुरूआत हो गई थी। कवि दलपतराम को तो अंग्रेजी शिक्षा का सीधा लाभ नहीं मिला; परंतु सन् 1850 के आसपास मुंबई युनिवर्सिटी की स्थापना होने के कारण नर्मद को अंग्रेजी शिक्षा का लाभ अवश्य मिला। सन् 1845 में कवि दलपतराम ने मध्यकालीन काव्य-परंपरा से भिन्न 'बापानी पीपर' नाम की एक पद्य की रचना की थी। वह समय आधुनिक गुजराती साहित्य का प्रारंभिक समय था।

सन् 1820 के आसपास से ही पश्चिम के प्रभाव से भारतीय समाज के उच्चवर्ग में तथा खासकर बड़े शहरों में लोकजागृति आने लगी थी। उस युग को पूरे भारत में 'नवजागरण' के नाम से जाना जाता है। गुजराती में उस युग को 'सुधारक युग' अथवा 'नर्मद-दलपत युग' कहा जाता है। नर्मद के पूर्व दुर्गाराम, रणछोड़ गिरधर, नगीनदास, नृसिंहाचार्य जैसे अनेक उग्र विचारों वाले विचारकों ने नये विचारों की दिशा में चिंतन आरंभ किया था। वैसे तो वह समय भारी मनोमंथन का समय था। कितने ही विचारक भारतीय संस्कृति और सनातन धर्म को आग्रहपूर्वक पकड़े रहने के पक्ष में थे; तो कितने ही पश्चिमी संस्कृति तथा उसके नये विचारों को अपनाने के लिए आतुर थे। इसके लिए समाज में वैचारिक संघर्ष भी हुए। विचारों के मामलों में सदियों से नींद में पड़ा समाज अब जग गया था। ऐसे ही वातावरण में 'सुधारकयुग' की कविताएँ रची गई थीं। समाज-सुधार और नवजागरण उस युग के मंच थे। वह मंथन काल कुछ भिन्न रूप में 'पंडितयुग' में गोवर्धनराम और मणिलाल नभुभाई द्विवेदी तक चला।

गुजराती का पहला परिष्कृत उपन्यास 'करणघेलो' (सन् 1866) इतिहास पर आधारित है। उस दौरान उपन्यास लेखन का प्रयत्न दूसरे लोगों ने भी किया। नाटक, निबंध, चरित्र

तथा समीक्षात्मक लेखन भी शुरू हो गया था। इस तरह नर्मदयुग (सन् 1845 से 1885) में सभी गद्यविधाओं का विकास हुआ।

सन् 1886 से 1125 तक का 'पंडितयुग' एक तरह से सुधारक युग की ही नवीन आवृत्ति है। सुधारक युग के विचार इस युग में दर्शन और चिंतन के रूप में अभिव्यक्त होने लगे। नर्मदयुग की मंथनशीलता ने इस युग में समन्वय का रूप धारण कर लिया। स्थूल तथा घटनाप्रधान रचनात्मकता को छोड़ कर युग का मानस जीवन, धर्म, कला, संस्कृति, प्रेम और अध्यात्म जैसे विषयों को गहन चिंतन के साथ प्रस्तुत करने लगा। इसका उत्तम उदाहरण गोवर्धनराम त्रिपाठी कृत चार खंण्डों वाला विशालकाय उपन्यास 'सरस्वतीचंद्र (सन् 1886 से 1905) है। उसमें प्रौढ़ता के साथ-साथ स्वच्छंदता भी है; तथा यथार्थ के चित्रण के साथ-साथ आदर्शों का भी निरूपण है। उसमें व्यक्ति जीवन परिवार जीवन, राजनीतिक जीवन तथा साधु जीवन–इस तरह चार भागों में कथा का वर्णन करके क्रमश: कर्म, अर्थ, धर्म और मोक्ष को दार्शनिक पीठिका पर प्रस्तुत किया गया है। लोककल्याण और लोकमंगल को केंद्र में रख कर लिखे गए और इस उपन्यास में पाश्चात्य संस्कृति, प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा वर्तमान भारतीय संस्कृति का समन्वय प्रस्तुत किया गया है। भारतीय उपन्यास साहित्य में जो स्थान रवींद्रनाथ टैगोर के 'गोरा' का है, वैसा ही स्थान गोवर्धनराम त्रिपाठी के 'सरस्वतीचंद्र' का भी है। सामाजिक कथा के रूप में प्रशंसित यह उपन्यास गुजराती साहित्य में आज भी एक उत्तम और प्रौढ़ कृति माना जाता है। उसी जमाने में रमणभाई नीलकंठ ने 'भद्रंभद्र' (सन् 1900) नामक हास्य-व्यंग्य प्रधान उपन्यास लिखकर सनातन धर्म की त्रुटियों का निर्देश किया तथा 'राईनो पर्वत' जैसे नाटक के द्वारा राजधर्म को प्रस्तुत किया। वैसे तो पंडितयुग भव्यता और दिव्यता की आराधना करने वाला युग रहा; परंतु यह भी मानना पड़ेगा कि उस युग में ही विश्वविद्यालयी शिक्षा प्राप्त विद्वान् लेखकों ने गुजराती साहित्य को सुदृढ़ बनाया।

11.3 गांधीयुग (सन् 1926-1945)

बहुत-से विचारक गांधीयुग का आरंभ 1930 ई. से मानते हैं; क्योंकि उनके अनुसार उसी वर्ष उमाशंकर जोशी की लंबी कविता 'विश्वशांति' प्रकाशित हुई थी। परंतु सच तो यह है कि सन् 1920 के आसपास ही गांधीयुग शुरू हो चुका था। उस समय तक पंडितयुग का आदर्श और चिंतन-दर्शनपरक साहित्य सर्जन यथार्थ से बहुत दूर हो चुका था और उधर जीवन की समस्याएँ तथा समाज की विचारधारा बदलने लगी थी। अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध सन् 1905 से ही विरोध शुरू हो गया था। सन् 1915 में गांधीजी दक्षिण अफ्रीका से स्वदेश वापस आए थे। दक्षिण अफ्रीका में सफलतापूर्वक सत्याग्रह कर चुके थे। यहाँ आकर उन्होंने अपने देश की राजनीतिक तथा सामाजिक स्थिति से परिचित होने के लिए अभियान आरंभ किया। अपने राजनीतिक गुरु श्री गोखले जी की प्रेरणा से उन्होंने पूरे देश की अनेक यात्राएँ कीं। देश की वास्तविक स्थिति देखकर वे विह्वल हो उठे थे। गाँवों में गरीबी, अज्ञान और अंधविश्वास तो था ही मनुष्य-मनुष्य के बीच भेदभाव भी बहुत गहरा था। शहरों की स्थिति भी उससे बहुत भिन्न न थी। राज्य शासन के नाम पर अंग्रेज़ सबका शोषण करने में लगे हुए थे और देश की जनता जाने-अनजाने सब कुछ सहन कर रही थी। समग्र देश धर्मभेद, जातिभेद, जातिभेद, प्रांतभेद, संस्कार-भेद और भाषा-भेद के असंख्य आघातों से क्षत-विक्षत हो रहा था। राष्ट्रीयता के नाम पर किसी प्रकार की जागृति न थी। वर्ण-भेद की वजह से सारा समाज अलग-अलग खेमों में बँटा हुआ था और छिन्न-भिन्न हो चुका था। भयंकर शोषण का दौर चल रहा था। ऐसे समय में गांधीजी को देश में

समता, मानवता और बंधुत्व की भावना जगाने की ज़रूरत महसूस हुई। उन्हें यह लगा कि इस समाज को एकमात्र स्वतंत्रता आंदोलन के ज़रिये जागृत नहीं किया जा सकता। शोषण रहित तथा सर्वोदयी भावना वाले समाज की रचना करने की उनकी प्रबल इच्छा थी। गाँवों को हरेक प्रकार से जागृत करने की ज़रूरत उन्हें महसूस हुई। इसी दौरान उन्हें फिर से दक्षिण अफ़्रीका जाना पड़ा; दो वर्ष में ही वे स्वदेश वापस आ गए। इस बार वे खाली हाथ नहीं आए; बल्कि 'मेरा हिंद स्वराज का स्वप्न' नामक एक छोटी-सी पुस्तिका के रूप में अपने दृढ़ निश्चय के साथ वापस आए और मात्र तीन वर्ष में ही उनका सिंहनाद देश भर में गूँजने लगा। 'हरिजन आश्रम', साबरमती आश्रम' आदि की स्थापना करने के साथ-साथ अपने विचारों के प्रचार-प्रसार के लिए 'हरिजन बंधु', 'यंग इंडिया' तथा 'नवजीवन' जैसी पत्रिकाओं का प्रकाशन भी उन्होंने आरंभ किया। सन् 1857 के विद्रोह के निष्फल हो जाने के बाद अचेत पड़ा भारतीय समाज अब पुनः जागृत होने लगा। जीवन के अनेक क्षेत्रों में गांधीजी का प्रभाव तेज़ी से बढ़ने लगा। कितने ही नेता और सामाजिक कार्यकर्ता उनके साथ जुड़ गए। सन् 1925 तक तो मोहनदास करमचंद गांधी नामक व्यक्ति हिंदुस्तान की सीमा के पार तक विख्यात हो गया। आज़ादी की लड़ाई निंरतर आगे बढ़ने लगी। इसी बीच सन् 1926 में गांधीजी की आत्मकथा 'सत्यना प्रयोगो' (सत्य के प्रयोग) नाम से प्रकाशित हुई; और उसी के साथ गुजराती साहित्य में 'गांधीयुग' की आधारशिला पड़ी।

उसी दौरान कन्हैयालाल मुंशी अपने ऐतिहासिक उपन्यास लेकर फलक पर आए। उन्होंने अपने उपन्यासों (गुजरातनो नाथ, जय सोमनाथ आदि) के तेज़स्वी पात्रों के माध्यम से गुजरात की अस्मिता लोगों के सामने प्रस्तुत की। गांधीजी के द्वारा उद्घोषित देशप्रेम तथा राष्ट्रीयता की भावना को उससे बल मिला। उधर धूमकेतु कहानी लेखन में सक्रिय हुए। पहली बार गुजराती साहित्य में उनकी कहानियों में गाँव तथा गाँव का आम आदमी चित्रित हुआ। अब तो साहित्य सिर्फ़ नगर की या उच्चवर्ग की वस्तु न रहकर गाँव की झोपड़ियों तक पहुँच गया। यह सब गांधीजी के प्रभाव से हुआ। ऐसा नहीं हुआ होता, तो पन्नालाल पटेल सर्जक (उनके पुरोगामी मेघाणी समेत) ग्राम्य जीवन के चित्रण की ओर शायद ही उन्मुख हुए होते। हालाँकि अन्य प्रेरक परिस्थितियों ने भी ग्राम्य जीवन पर आधारित साहित्य सर्जन की पृष्ठभूमि तैयार की थी, जिनमें शिक्षा, उद्योग और शहर की ओर गाँव की अभिमुखता का उल्लेख किया जा सकता है।

गांधीयुगीन साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

- दलितों, पीड़ितों और शोषित के प्रति समभाव दिखाने वाला साहित्य।
- मानवता के गान और समानता तथा समभाव के आदर्श वाला साहित्य।
- ग्राम्य जीवन का चित्रण तथा आम आदमी का निरूपण करने वाला साहित्य।
- उत्तम चरित्र वाले नागरिकों के आदर्श का चित्रण करने वाला साहित्य।
- वर्गभेद मिटाने की हिमायत करने वाला साहित्य।
- गांधीजी के जीवन, उनके कार्यों और विचारों का आलेखन करने वाला साहित्य।
- प्रकृति एवं प्रेम को यथार्थ की भूमिका पर प्रस्तुत करने वाला साहित्य।
- विश्वमानवता की भावना जगाने वाला साहित्य।

- शुद्ध कला के बजाय जीवन के चित्रण पर बल देने वाला साहित्य।
- सन् 1940 के बाद शुद्ध साहित्य की दिशा में कदम बढ़ाने वाला साहित्य।
- उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध, कविता, चरित्र आदि तमाम विधाओं में समाज और मूल्यों के चित्रण पर बल देते हुए भी साहित्यिक गुणवत्ता की रक्षा करने के लिए प्रयत्नशील साहित्य।
- सरल-सहज भाषा और स्थानीय बोली को महत्व देने वाला साहित्य।

11.4 साहित्य में गाँव

गांधीजी ने जब गाँवों में बसे भारत का पहली बार दर्शन किया, तब उन्हें महसूस हुआ कि भारत की आत्मा तो गाँवों में पड़ी-पड़ी घुट रही है। इसीलिए उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन के साथ-साथ ग्रामोद्धार की योजना बनाई। गाँवों के उद्धार तथा पुनर्रचना के लिए ग्रामाभिमुख होने की भावना को उन्होंने तेज़ किया। स्वदेशी भावना को जागृत करके उन्होंने चरखे जैसा उपार्जन का एक साधन दिया। गाँवों के उत्थान के लिए उन्होंने शिक्षा के साथ-साथ वर्गभेद तथा वर्णभेद मिटा करके अस्पृश्यता को दूर करने का अभियान चलाया। सत्य और अहिंसा जितना ही महत्व गांधीजी ने अस्पृश्यता निवारण को दिया था। साहित्य पर गांधीजी का प्रभाव स्वाभाविक रूप से ही पड़ा। एक तरफ तो गांधीजी की सादगी और उनकी विचारधारा ने साहित्य को यथार्थवादी बनाया, तो दूसरी ओर उनकी भावनाएँ साहित्य को आदर्शवाद की ओर ले गई। झबेरचंद मेघाणी यथार्थवादी रचनाशीलता के उदाहरण हैं; तो रमणलाल वसंतलाल देसाई आदर्शवादी साहित्य सर्जन के उदाहरण हैं।

शिष्टवर्ग के लिए ही साहित्य सर्जन का आग्रह गांधीयुग में खंडित हुआ। इसी तरह दिव्य तथा भव्य विषय वाला साहित्य ही साहित्य कहा जा सकता है–यह धारणा भी गांधीयुग में टूटी। साहित्य के दृष्टिकोण में व्यापकता आई और संकीर्णता दूर हुई। उच्चवर्ग या उच्च मध्यवर्ग को लक्ष्य में रखने वाला पंडितयुगीन साहित्य गांधीयुग में परिवर्तित हुआ। यहाँ तक आते-आते आम आदमी और उसका जीवन साहित्य का विषय बना। सीधे एवं सरल ढंग से कहें, तो सामान्य जनता के द्वारा सामान्य जनता के लिए साहित्य रचा जाने लगा। एक सामान्य मजदूर भी समझ सके, ऐसी सरल भाषा-शैली का प्रचलन भी हुआ। इस तरह गाँव पहली बार साहित्य का विषय बना।

धूमकेतु की कई कहानियों में तथा 'पराजय' और 'अजिता' जैसे उपन्यासों मे ग्राम-जीवन की पक्षधरता सन् 1926 से ही दिखने लगी थी। उमाशंकर जोशी ने 'सापना भारा' (सन् 1931-32) के एकांकियों में पूर्वोत्तर गुजरात के ग्रामीण इलाकों का चित्रण किया। उसके बाद मेघाणी ने साहित्य में सोरठी (काठियावाड़ी) लोकजीवन का चित्रण शुरू किया। तदुपरांत पन्नालाल पटेल और उनके समकालीनों ने गुजरात के अलग-अलग भागों के लोकजीवन को साहित्य के माध्यम से मुखरित किया। गाँव का कृषि आधारित जीवन, गाँव के लोगों के व्यसन तथा अंधविश्वास में रचे-पचे लोकमानस के आपसी ईर्ष्या-द्वेष तथा उससे पैदा होने वाले झगड़े, दाँव-पेच, पारिवारिक वैर तथा मान-अपमान की ग्रामीण धारणाओं का चित्रण साहित्य में होने लगा। इसके अलावा प्रेम, स्त्री-पुरुष-संबंधों की जटिलताएँ, जाति-बंधन, प्राचीन लोककथाएँ तथा शौर्यकथाएँ भी साहित्य में काफी मात्रा में चित्रित होने लगीं। गाँव के किसानों और कारीगरों का जीवन साहित्य की पीठिका के रूप में उभरने लगा। कहीं-कहीं स्वच्छंदतावाद का प्रभाव था, तो अधिकांशत:

यथार्थवादी दृष्टि की प्रधानता थी। कन्हैयालाल मुंशी, धूमकेतु आदि लेखक इतिहास का आधार लेकर जनता के जीवन की अस्मिता को उजागर करने लगे थे। और, इस तरह गाँव तथा गाँव का उपेक्षित जनसमूह, अपनी दिनचर्या, अपने जीवन के क्रिया-कलापों तथा रीति-रिवाजों के साथ अपनी ही बोली-भाषा में अभिव्यक्ति पाने लगा। पन्नालाल पटेल और रचनाकार में यह सब कुछ अत्यंत स्वाभाविकता से अभिव्यक्त हुआ है।

11.5 पन्नालाल पटेल के समकालीन रचनाकार

सन् 1940 में पन्नालाल का पहला उपन्यास 'वळामणा' प्रकाशित हुआ। उसके पहले उमाशंकर जोशी के 'सापना भारा' के एकांकियों तथा 'श्रावणी मेळो' आदि कहानियों में, झवेरचंद्र मेघाणी के उपन्यास 'सोरठ तारा बहेता पाणी' में ग्राम जीवन तथा ग्रामीण जनमानस का निरूपण हो चुका था। सामान्य विषयों का वर्णन करने वाली कविताओं ने भी विषय के प्रति अपनी घेरेबंदी को तोड़ दिया था। रमणलाल वसंतलाल देसाई जैसे युगमूर्ति कथाकार ने 'ग्रामलक्ष्मी' जैसे उपन्यास की रचना करके गांधीजी के समग्र जीवन, कार्य तथा जीवन दर्शन को साहित्य द्वारा जनता के समक्ष रखा था। पन्नालाल के सामने रमणलाल वसंतलाल देसाई का आदर्श था; परंतु यह कहना चाहिए कि उन्होंने एकांकीकार और कहानीकार उमाशंकर जोशी तथा कथाकार मेघाणी की यथार्थवादी रचनाशीलता का मार्ग ही पकड़ा था। उस दौरान कविता भी प्राय: यथार्थवादी रही। पन्नालाल ने इन सर्जकों के बीच अपने विवेक से अलग रास्ता अपनाया। जीवन की विसंगतियों के प्रति उमाशंकर जोशी की भाँति पन्नालाल कठोर नहीं बने; क्योंकि वे समाज सुधारक बनना नहीं चाहते थे। उन्होंने गाँवों के सुधार की कोई योजना नहीं बनाई। दूसरी तरफ़ उन्होंने रमणलाल वसंतलाल देसाई की तरह आदर्शों के प्रचार-प्रसार का भी मार्ग नहीं पकड़ा। वे कन्हैयालाल मुंशी के समान इतिहास के अध्येता नहीं थे; साथ ही उन्होंने देश-विदेश का साहित्य भी नहीं पढ़ा था। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक था कि पन्नालाल पटेल ने अपने आसपास के, अपने देखे-भाले तथा अपने जिए-भोगे जीवन को व्यक्ति चरित्र के रूप में यथार्थवादी दृष्टि से चित्रित करना पसंद किया। यही नहीं वे अपने सर्जन के द्वारा किसी लोकमंगल की भावना का प्रचार भी नहीं करना चाहते थे। फिर सुधार का उपदेश देकर जनता को किसी आदर्श की दिशा में ले जाने का उनका कोई इरादा भी न था। उनका सरोकार तो पारिवारिक जीवन और उसी बहाने ग्रामीण समाज के जीवन के चित्रण के साथ था। गाँव की खेती, गाँव के लोगों के पर्व, तीज-त्योहार तथा उनके जीवन के अच्छे-बुरे प्रसंगों को किसी कथासूत्र में पिरोकर चित्रित करना पन्नालाल का लक्ष्य था। उन्हें तो किसान-मजदूर की बात करनी थी; प्रेम और विरह के बहाने व्यक्ति की कूवत का परिचय देना था तथा साथ ही प्राकृतिक आपदाओं से जूझते मनुष्य की औकात को उभारना था। इन सब विशेषताओं के कारण पन्नालाल पटेल कुछ अलग किस्म के सर्जक के रूप में उभर कर हमारे सामने आते हैं।

पन्नालाल के अन्य समकालीनों में 'जनमटीप' और 'भवसागर' के लेखक ईश्वर पटेलीकर, 'खेतरने खोळे' के लेखक पीतांबर पटेल तथा 'लीलुडी धरती' तथा 'वेळा वेळानी छांयडी' के लेखक चुनीलाल मडिया विशेष उल्लेखनीय हैं। एक तरह से कहें, तो ये सभी लेखक 'गांधीयुग के उत्तरार्ध के लेखक हैं; और इनके सर्जन पर गांधीजी के जीवन तथा उनके क्रिया-कलापों का परोक्ष प्रभाव लक्षित होता है। पीतांबर पटेल के

उत्तर गुजरात के लोकजीवन का, मडिया ने सोरठी (काठियावाड़ी) लोकजीवन का तथा ईश्वर पेटलीकर ने मध्यगुजरात के जन जीवन का चित्रण किया है। सचमुच वह काल जनपदी (ग्राम-केन्द्रित) कथा साहित्य का स्वर्णकाल था।

11.6 सारांश

पन्नालाल पटेल आधुनिक युग के सर्जक हैं। गुजराती साहित्य में आधुनिक युग का प्रारंभ दलपत-नर्मद (सन् 1950) से शुरू हुआ। उस युग का साहित्य मुख्यत: सुधारवादी साहित्य था। वह नवजागरण का काल था; अंग्रेजों के शासन तथा पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से उस दौरान जन-जागृति आने लगी थी। गुजरात के सांस्कृतिक क्षेत्र में उस काल को प्रथम नवजागरण का काल कहा गया है। दलपत-नर्मद का समय पूरा होते ही 'पंडितयुगीन' साहित्य का उदय होता है। उस युग में विश्वविद्यालयी शिक्षा प्राप्त विद्वानों द्वारा विचार तथा चिंतन प्रधान साहित्य लिखा गया। भावनाओं तथा संवेदनाओं के साथ-साथ जीवन की विसंगतियों का परिचय कराने वाला साहित्य उन सर्जकों ने हमें दिया। गोवर्धनराम त्रिपाठी का चार खंडों का विशालकाय उपन्यास 'सरस्वतीचंद्र' पंडितयुग की एक अनुपम देन है। उसमें उस युग की सभी विशेषताएँ एक साथ उभरकर सामने आई हैं। उसके बाद कन्हैयालाल मुंशी ने इतिहासपरक उपन्यासों की रचना की। सन् 1920 के आसपास देश और समाज पर गांधीजी का प्रभाव व्यापक होने लगा था; परिणामत: साहित्य पुन: समाज तथा उसकी समस्याओं के चित्रण की ओर अभिमुख हुआ। पन्नालाल पटेल के पूर्ववर्ती तथा समकालीन सर्जक के रूप में मेघाणी, धूमकेतु, रामनारायण विश्वनाथ पाठक (रा. वि. पाठक), उमाशंकर जोशी आदि ने गांधीयुगीन विचारधारा का पोषण करने वाला साहित्य रचा। सन् 1940 से पन्नालाल पटेल ने साहित्य सर्जन के क्षेत्र में प्रवेश किया और सन् 1947 में उन्होंने 'मानवीनी भवाई' जैसी श्रेष्ठ रचना हमें दी। इस तरह आपको, इस इकाई में इस विषय पर समीक्षात्मक जानकारी मिली।

11.7 प्रश्न

1. आधुनिक गुजराती साहित्य के युग-संदर्भ का चित्रण कीजिए।
2. पंडितयुगीन साहित्य की पृष्ठभूमि बताइए।
3. गांधीयुगीन साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों का वर्णन कीजिए।
4. साहित्य में गाँव का प्रवेश कैसे हुआ तथा उसका परिणाम क्या हुआ?
5. पन्नालाल पटेल के समकालीन सर्जकों का परिचय दीजिए।